भारतीय संविधान एवं सामाजिक न्याय

–शिव नन्दन यादव
प्रवक्ता– भूगोल विभाग
श्रीचन्द्र रा. इ. का. गोसाई गंज, सुलतानपुर

समानता लोकतान्त्रिक व्यवस्था और विकास का मूल सिद्धान्त है। समानता से आशय है, जाति, धर्म लिंग, वर्ग आदि के भेदभाव के बिना सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समान अवसर और सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिए। यदि कुछ वर्ग या व्यक्तियों का समूह सामाजिक या क्षेत्रीय विषमताओं के कारण विकास की दौड़ में पीछे रह गया, तो समाज का यह कर्तव्य है कि वह इन्हें विकास की दौड़ में बराबरी पर लाये, समकालीन भारत में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के बावजूद निष्पक्ष एवं व्यवहारिक रूप में पिछड़ वर्गों का सामाजिक उत्थान करना चिंतनशील बुद्धिजीवियों के समक्ष एक चुनौती है, स्मरणीय है कि सामाजिक उत्थान एक समतावादी विचार है जिसे प्राप्त करना मनुष्य का मूलभूत अधिकार है और वह एक अर्जित प्रक्रिया भी है, परन्तु भारतीय परिवेश में इस अर्जित प्रक्रिया को आरक्षण प्रदत्त प्रक्रिया बनाने का 'भगीरथ प्रयास'हमारे राजनेताओं द्वारा प्रारम्भ से ही किया जा रहा है। भारतीय संविधान की भूमिका में कहा गया है कि उसका निर्माण सबकी स्वतन्त्रता सबकी समानता व पारस्परिक भ्रातृत्व की मान्यता के आधार पर हुआ है। उसमें केवल संविधान निर्माण के समय से ही सबके लिए अवसर की समानता की प्रत्याभूति नहीं की गयी वरन प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक असमानता को भी दूर करने के प्रयत्न का समावेश किया गया है। संविधान निर्माण के समय समाज की कुछ जातियों की स्थिति इतनी पिछड़ी हुई थी सब के साथ अवसर की समानता दिये जाने ही से वे सबके समान स्तर पर नहीं आ सकती थी। इसलिए उन्हें राष्ट्रीय स्तर तक लाने के लिए विवेकपूर्ण संरक्षण, सहायता तथा निश्चयात्मक कार्य योजना की आवश्यता महसूस की गयी है इसके लिए संविधान के अनुच्छेद–341 व 342 में प्राविधान किया गया। अनुच्छेद– 14, 15 (1–2–3), 16(1–2–3?) 17, 18, 19, 23, 46 के अनुसार समाज के पिछड़े तथा दलित वर्गो को विशेष सहूलियत देने की व्यवस्था की गयी 1951 में भारतीय सरकार द्वारा प्रथम संविधान संशोधन द्वारा सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष कानून बनाने का प्रस्ताव पारित कराया गया। अन्य पिछड़े वर्गो के लिए यह प्राविधान अनुच्छेद– 340 में किया गया वस्तुतः सदियों की असमानतावादी परम्परागत एवं द्वेषपूर्ण राजनीतिक सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के शिकार व दबे, कुचले, पिछड़े लोगों के कल्याण के लिए भारतीय संविधान में की गयी इन विशेष व्यवस्थाओं को आरक्षण की संज्ञा दी जाती है, जिसके जरिये सामाजिक न्याय प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। समाजिक विकास की प्रक्रिया में जब कोई वर्ग या जाति विशेष रूप से पिछड़ जाती है तो उसे समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए सकारात्मक व संरक्षणात्मक विधि का प्रयोग सरकार द्वारा समय–समय पर किया जाता है। डॉ0 अम्बेडकर के प्रयासों से भारतीय संविधान सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों पर अवलम्बित है तथा संविधान में यह उललेख किया गया है कि सरकार पिछड़े एवं दलित वर्गों की स्थिति में सुधार के लिए हर सम्भव प्रयास करेगें। अनुच्छेद– 341 व 342 द्वारा राष्ट्रपति

तथा राज्यपालों को लोक अधिसूचना जारी कर उन जातियों, मूलवंशों या जनजातियों अथवा उनके भागों या समूहों को अनुसूचित जाति के रूप में विनिर्दिष्ट कर उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया, जिससे इन जातियों को सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके, इस अधिकार के अन्तर्गत राष्ट्रपति ने सर्वप्रथम 1953 में काका साहेब कालेलकर की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया गया, जिसके जिम्मे पिछड़ेपन की कसौटी निर्धारित करना सम्पूर्ण भारत के लिए पिछड़े एव ं कमजोर वर्गों की सूची तैयार करके पिछड़े वर्गों की कठिनाईयों की समीक्षा तथा उनकी स्थिति में सुधार हेतु सिफारिशे देने जैसे महत्वपूर्ण कार्य सौपें गये थे। दूसरा आयोग सन् 1979 में बी0पी0 मण्डल की अध्यक्षता में गठित किया गया। आयोग में पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने की सिफारिश की। सामजिक न्याय एक क्रान्तिकारी विचार है, सैद्धान्तिक रूप से सामाजिक उत्थान का अर्थ शोषित व्यक्तियों के जीवन की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए एक माध्यम के रूप में लगाया जाता है वास्तव में देखा जाय तो सामाजिक उत्थान का अर्थ संकीर्ण एवं व्यापक दोनों अर्थों में लगाया जाता है। वास्तव में सामाजिक उत्थान के व्यापक अर्थ में वंचित वर्ग वह है जो आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षणिक सुविधाओं से वंचित है परन्तु जहां सामाजिक उत्थान का संकीर्ण अर्थ लगाया जाता है वहां वर्ग शब्द जाति के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा वंचित वर्ग के अन्तर्गत वंचित जातियों को रखा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि 26 जनवरी 1950 अर्थात जब से हमारे देश का संविधान लागू हुआ तब से आज तक सामाजिक न्याय प्राप्त करने की दिशा में हमारा संविधान कितना सफल हुआ है अर्थात भारतीय संविधान का सामाजिक न्याय प्राप्त करने में कितना योगदान है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वंचित वर्ग अब वंचित जाति के रूप में परिवर्तित हो चुका है तो अब यह वर्ग न शोषित है न पिछड़ा आरक्षण नीति द्वारा देश की सरकारी नौकरियों में विशेष कर प्रशासनिक सेवाओं में इनका योगदान निरन्तर बते हैं तो आखिर आरक्षण से भारत की गरीब, भूखी, नंगी और उत्पीड़ित जनता की रा`जी–रोटी के लिए कोई फायदा क्यों नहीं हो रहा है। आज भी वंचित वर्ग प्रसन्नता पूर्वक बेगार क्यों करता है। श्रेष्ठजनों के सम्मुख आसन ग्रहण करने में और सुरूचिपूर्ण वस्त्र धारण करने में क्यों संकोच अनुभव करता है व्यवस्था में परिवर्तन आया है परन्तु मात्र नगरों में अथवा उस सम्पन्न वर्ग के लिए जो व ंचित था किन्तु अब वह अथाह धन सम्पदा का स्वामी है। सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए लागू की गयी का लगभग अधिकांश लाभार्थी इसी वर्ग से आते है ं। सामाजिक न्याय के प्राप्तार्थ वंचित वर्ग की हीनता की मानसिकता का अन्त नहीं हुआ है और न ही उन्ही ं 'अहं ब्रह्मस्मि' सूक्ति का अनुभव है क्यों कि वंचित वर्ग कभी भी सीमित अधिकारों के ऊपर नहीं उठ सका है। वंचित वर्ग के मानसिक एवं शैक्षणिक विकास के सतत् व सार्थक प्रयास ही उन्हें संकीर्ण सामाजिक क्रियाकलापों से मुक्त रख सकेगे। सामजिक न्याय के लिए आवश्यक है कि उन लोगों को ही संरक्षण प्रदान किया जाए जो वास्तविक हकदार है। वास्तविक पिछड़े, दलित गरीबों का भला तब तक नहीं होगा जब तक वंचित वर्ग सुविधाभोगी वर्ग पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय, उनके लिए आर्थिक सीमा तय कर देनी चाहिए जो गरीबों, दलितों एवं पिछड़ों की सारी सुविधाओं को हजम कर रहा है। पिछड़ा एवं दलित वर्ग गरीबी को अपनी नियति मानकर केवल इस बात से संतोष करना पड़ रहा है कि उनकी जाति का अमुख व्यक्ति सत्ता के शिखर पर बैठा है। यदि वास्तव में इन वर्गो के साथ

सामाजिक न्याय करना है तो उसका श्रेष्ठतम उपाय है कि उन्हें योग्तया प्रदान करने की व्यवस्था की जाय, उसमें या ग्यता के सृजन की क्षमता उत्पन्न की जाय। यदि योग्यता के सृजन की क्षमता जागृति होगी तो वह समाज निश्चय ही प्रगति करेगा। इसमें दो राय नहीं कि सवैधानिक प्राविधानों से देश में पिछड़े एवं दलित तपका की स्थिति में सुधार हुआ है। पिछले कई सौ सालों से समाज का शोषित और दलित वर्ग आदि उच्च पदों पर प्रतिष्ठित है और देश की आर्थिक उन्नति में अपनी सहभागिता साबित कर रहा है। स्वतन्त्रता से पूर्व जहा देश में भेद मूलक समाज का वर्चस्व था वहीं अब यह स्थिति लगातार समाप्त होने की ओर है, शहरी परिवेश में कभी–कभी तो यह पता कर पाना मुशकिल हो जाता है कि कौन किस समाज से है। सामाजिक न्याय का उद्देश्य समाज के वास्तविक पिछड़े दलितों गरीबों को अन्य लोगों के समकक्ष लाना है, जिससे समाज में समरसता पैदा हो सके। आज भी भारत का पिछड़ा एवं दलित वर्ग विशेषतः गांव में निवास करने वाला सुविधाहीन वर्ग अन्याय पूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त है, सवैधानिक समता के नियमों की ज्ञान ज्योति आरक्षण द्वारा नगरों एवं कस्बों में पहुंची अवश्य है, परन्तु निराश्रित वंचित वर्ग के जीवन निर्वाह में आंशिक योगदान ही प्रदान कर सकी है। इसी कारण दशकों से आरक्षण का लाभ उठाने वाला गांव का कलुआ आज भी कलुआ ही है न कि कालेराम। वस्तुतः सहृदयता से वंचित वर्ग का सामाजिक उत्थान होना चाहिए।

महत्वपूर्ण सुझावः–

1. प्राथमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय जिससे उच्च शिक्षा संस्थानों एवं कार्य स्थलों में कम प्रतिनिधित्व करने वाले स्वाभाविक प्रतियोगी बन जाय।
2. 2. जाति व्यवस्था के उन्मूलन के लिए सरकार को बड़े पैमाने पर बढ़ावा देना चाहिए।
3. प्रतिष्ठित उच्च शिक्षा संस्थानों में सीटों की संख्या बढ़ायाी जानी चाहिए।
4. जाति, धर्म, क्षेत्र तथा भाषा आदि असमानतायें दूर कने का सार्थक प्रयास होना चाहिए।
5. संवैधानिक प्रावधानों के तहत जो उच्च स्तर प्राप्त कर चुके हों उन्हें पुनः ऐसे लाभ से वंचित किया जाय।

संदर्भित पुस्तक :–

1. हमारा संविधान – सुभाष कश्यप
2. भारतीय संविधान – डी.डी. बसु
3. समाजिक उत्थान एवं आरक्षण – सुशील सिंह
4. माध्यमिक नागरिकशास्त्र – शिव नारायन सिंह राना
5. नव भारत टाइम्स का संपादकीय
6. भारतीय प्रशासन तथा नागरिक जीवन – डॉ. राम किशोर पाण्डेय